

वर्तमान वैश्विकसंकटस्य मध्ये योगस्य प्रासंगिकता

रीना अग्रवाल^{1*} एवं डॉ बलराम शर्मा²

¹शोधकर्ता, निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर।

²अनुसंधान गाइड, कला एवं मानविकी विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर।

*Corresponding Author: kvsreena.aggarwal@gmail.com

Citation: अग्रवाल, रीना एवं शर्मा, बलराम (2026). वर्तमान वैश्विकसंकटस्य मध्ये योगस्य प्रासंगिकता. *Journal of Modern Management & Entrepreneurship*, 16(03), 254-257.

ABSTRACT

वर्तमान युग में मानवता अनेक वैश्विक संकटों से ग्रस्त है महामारी, जलवायु परिवर्तन, मानसिक स्वास्थ्य की व्यापक गिरावट, भू-राजनीतिक संघर्ष, आर्थिक असमानता तथा आध्यात्मिक शून्यता। इन संकटों के मूल में मानव चित्त की अस्थिरता, इंद्रिय-सुखों की अति, अहंकार तथा प्रकृति से विच्छिन्नता निहित है। प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा में योग एक समग्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित है, जो शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के एकीकरण द्वारा व्यक्ति को आंतरिक शांति, समत्व तथा सृष्टि के साथ सामंजस्य प्रदान करता है। यह शोध पतंजलि योगसूत्र, भगवद्गीता तथा उपनिषदों के आलोक में योग की दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक प्रासंगिकता का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह सिद्ध करता है कि योग केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य का साधन नहीं, अपितु वैश्विक शांति, स्थिरता तथा मानव कल्याण का अनिवार्य आधार है।

शब्दकोश: वैश्विकसंकटस्य, जलवायु परिवर्तन, मानसिक स्वास्थ्य, भू-राजनीतिक संघर्ष, मानव कल्याण।

प्रस्तावना

वैश्विक संकट आज मात्र बाह्य घटना नहीं हैं वह मानव चेतना की विकृति का प्रतिबिंब हैं। जलवायु संकट उपभोग की असीम लालसा का परिणाम है। युद्ध तथा हिंसा अहंकार तथा द्वेष से उत्पन्न होती हैं। इन सबके बीच योग की प्रासंगिकता इसलिए बढ़ जाती है क्योंकि वह बाह्य परिवर्तन से पहले आंतरिक परिवर्तन पर बल देता है।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(गीता २.४८)

अर्थात् योग में स्थित होकर आसक्ति त्यागकर कर्म करो। सफलता-असफलता में समभाव ही योग है। यह समत्व आज के अस्थिर विश्व में मानसिक संतुलन का आधार है।

रीना अग्रवाल एवं डॉ बलराम शर्मा: वर्तमान वैश्विकसंकटस्य मध्ये योगस्य प्रासंगिकता

योग शब्द का अर्थ एक्य या एकत्व होता है जो संस्कृत धातु युज से निर्मित है। युज का अर्थ होता है जोड़ना। व्यावाहरिक स्तर पर योग शरीर, मन और भावनाओं में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने का एक साधन है। योग भारतीय ज्ञान की हजारों वर्ष पुरानी शैली है। हजारों मूर्तियाँ इसके संबंध में योग की स्थिति में अभी तक प्रमाणिक रूप में हैं। भगवत गीता में अनेकों बार योग शब्द का उल्लेख किया गया है। योग के साक्ष्य सिंधु घाटी, वैदित सभ्यता तथा बौद्ध एवं जैन दर्शन में किसी-न-किसी रूप में प्राप्त हुआ है। योग के प्रसिद्ध ग्रंथों में पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र एवं वेदव्यास द्वारा रचित योगभाष्य का विशेष महत्त्व है। नागेश भट्ट द्वारा रचित योग सूत्रवृत्ति भी विख्यात है।

योग के आठ अंगों को अष्टांग कहते हैं जिससे आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। यम, नियम, आसन, प्रणायाम, धारणा, ध्यान, प्रात्याहार, समाधि को योग के आठ अंग माना जाता है। योग में प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। प्राण का अर्थ जीवन शक्ति एवं आयाम का अर्थ ऊर्जा पर नियंत्रण होता है। अर्थात् श्वास लेने संबंधी कुछ विशेष तकनीकों द्वारा जब प्राण पर नियंत्रण किया जाता है तो उसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के तीन मुख्य प्रकार होते हैं— अनुलोम—विलोम, कपालभाति प्राणायाम और भ्रामरी प्राणायाम।

भारतीय धर्म और दर्शन में योग का अत्यधिक महत्त्व है। आध्यात्मिक उन्नति या शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये योग की आवश्यकता एवं महत्त्व को प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक संप्रदायों द्वारा एकमत से स्वीकार किया गया है। जैन और बौद्ध दर्शनों में भी योग के महत्त्व को स्वीकृति प्राप्त है। वर्तमान समय अर्थात् आधुनिक युग में योग के महत्त्व में और अधिक अभिवृद्धि हुई है। मनुष्यों में बढ़ती व्यस्तता एवं मन की व्याकुलता इसके प्रमुख कारणों में से हैं। आधुनिक मनुष्य को आज योग की अत्यधिक आवश्यकता हो गई है। मन और शरीर अत्यधिक तनाव, प्रदूषण एवं भागदौड़ भरी जिंदगी के कारण रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। व्यक्ति के अंतर्मुखी और बहिर्मुखी स्थिति में असंतुलन आ गया है।

चित्त की शुद्धि तथा मानसिक स्वास्थ्य

वर्तमान वैश्विक संकटों में मानसिक स्वास्थ्य की गिरावट सबसे गम्भीर तथा व्यापक समस्या है। तनाव, चिंता, अवसाद, अनिद्रा, एकाग्रता की कमी, भावनात्मक अस्थिरता तथा अस्तित्वगत शून्यता आज के मनुष्य के दैनिक अनुभव बन चुके हैं। इन सबके मूल में चित्त की अशुद्धि तथा वृत्तियों का अनियन्त्रित प्रवाह निहित है। योग—दर्शन इस समस्या का सबसे गहन तथा व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। महर्षि पतंजलि चित्त को त्रिगुणात्मक मानते हैं सत्त्व, रजस् तथा तमस्। जब रजस् तथा तमस् की प्रधानता होती है तब चित्त में क्षिप्त, मूढ़ तथा विक्षिप्त अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। ये अवस्थाएँ ही आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में एंग्जाइटी डिस्ऑर्डर, डिप्रेशन, अटेंशन डेफिसिट तथा इमोशनल डिसरेगुलेशन के रूप में प्रकट होती हैं

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६.३५)

अर्थात् मन निश्चय ही कठिन तथा चंचल है, किंतु अभ्यास तथा वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है।

कर्मयोग तथा नैतिक पुनरुत्थान

वर्तमान वैश्विक संकटों की जड़ें केवल राजनीतिक, आर्थिक अथवा प्रौद्योगिकीय नहीं हैं, वे गहन नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक विघटन में निहित हैं। भ्रष्टाचार, शोषण, युद्ध, पर्यावरणीय विनाश तथा सामाजिक असमानता, इन सबके मूल में स्वार्थ, फलासक्ति, अहंकार तथा कर्तव्य से विमुखता विद्यमान है। मनुष्य कर्म तो करता है, किन्तु फल की आसक्ति तथा परिणाम की चिन्ता में इतना उलझ जाता है कि कर्म स्वयं ही अशुद्ध, हिंसक तथा

विनाशकारी हो जाता है। भगवद्गीता का कर्मयोग इसी नैतिक तथा आध्यात्मिक पतन का प्रत्युत्तर है। यह मात्र व्यक्तिगत साधना नहीं, अपितु सामाजिक, राजनीतिक तथा वैश्विक स्तर पर नैतिक पुनरुत्थान का शाश्वत मार्ग है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध-क्षेत्र में ही कर्मयोग की शिक्षा देते हैं, क्योंकि जीवन स्वयं एक युद्ध-क्षेत्र है। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

(गीता २.४७)

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, फल में कभी नहीं। कर्मफल का हेतु मत बनो तथा अकर्म में भी आसक्ति मत रखो। यह श्लोक आज के उपभोगवादी तथा परिणाम-केंद्रित युग में क्रान्तिकारी है। आधुनिक मनुष्य सफलता, मान-सम्मान, धन तथा शक्ति के फल की आसक्ति में इतना डूबा हुआ है कि कर्तव्य-बोध ही लुप्त हो गया है। फलासक्ति ही भ्रष्टाचार, अनैतिक प्रतिस्पर्धा तथा हिंसक संघर्षों को जन्म देती है।

प्रकृति के साथ सामंजस्य

वर्तमान युग का सबसे गम्भीर तथा दीर्घकालिक संकट जलवायु परिवर्तन तथा पर्यावरणीय विनाश है। वैश्विक तापन, वन-विनाश, जैव-विविधता की हानि, जल-संकट तथा प्रदूषण, सब मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ किए गए असंतुलित व्यवहार के परिणाम हैं। इस संकट का मूल मात्र प्रौद्योगिकीय अथवा आर्थिक नहीं, अपितु दार्शनिक तथा चेतनागत है। मनुष्य ने प्रकृति को भोग्य वस्तु मान लिया है, जबकि भारतीय ज्ञान-परम्परा में प्रकृति को माता, शक्ति तथा चेतन सत्ता के रूप में देखा गया है। योग इसी दृष्टि को पुनर्स्थापित करता है तथा मनुष्य को प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य में स्थापित करता है।

सांख्य तथा योग-दर्शन में प्रकृति को पुरुष के समक्ष स्वतंत्र तथा सक्रिय तत्त्व माना गया है। पतंजलि योगसूत्र में प्रकृति के गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) के संतुलन को ही चित्त-शुद्धि का आधार बताया गया है। जब मनुष्य के भीतर गुणों का असंतुलन होता है, विशेषकर रजस् तथा तमस् की अतिशयता, तब वह बाह्य प्रकृति के साथ भी हिंसक तथा शोषक व्यवहार करने लगता है। अतः आन्तरिक सामंजस्य ही बाह्य पर्यावरणीय सामंजस्य का मूल है।

योग शरीर को पंचमहाभूतोंकृपृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशकृसे निर्मित मानता है। हठयोग तथा आयुर्वेद दोनों ही इस तथ्य पर बल देते हैं कि शरीर प्रकृति का ही सूक्ष्म रूप है। जब साधक आसन, प्राणायाम तथा ध्यान के द्वारा अपने शरीर तथा प्राण को शुद्ध करता है, तब वह इन महाभूतों के प्रति संवेदनशील हो जाता है। पृथ्वी तत्त्व स्थिरता देता है, जल तत्त्व प्रवाह तथा शुद्धता, अग्नि तत्त्व रूपान्तरण, वायु तत्त्व गति तथा आकाश तत्त्व विस्तार। इन तत्त्वों का सन्तुलन ही स्वास्थ्य है। इनका असंतुलन ही रोग तथा पर्यावरणीय विनाश दोनों का कारण बनता है। उपनिषदों में प्रकृति के प्रति गहन श्रद्धा व्यक्त की गई है। ईशावास्योपनिषद् का उद्घाटन मन्त्र ही इस दृष्टि का सार है

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से आच्छादित है। त्यागभाव से भोग करो, किसी के धन का लोभ मत करो। यह मन्त्र उपभोगवाद तथा पर्यावरण-शोषण के विरुद्ध सबसे शक्तिशाली दार्शनिक घोषणा है। योग इसी भाव को जीवन में उतारता है।

एकता तथा वैश्विक शांति

वर्तमान विश्व गहरे विभाजनों से ग्रस्त है, राष्ट्रों के बीच युद्ध तथा तनाव, धर्मों तथा संस्कृतियों के बीच संघर्ष, आर्थिक असमानता से उत्पन्न सामाजिक विद्वेष, तथा डिजिटल युग में उत्पन्न वैचारिक ध्रुवीकरण। इन सबके बीच शांति का अभाव मात्र राजनीतिक अथवा सैन्य समस्या नहीं, अपितु चेतना की विच्छिन्नता का परिणाम है। मनुष्य अपने को पृथक्, सीमित तथा स्वार्थपूर्ण इकाई के रूप में देखने लगा है। योग इसी विच्छिन्नता का सबसे गहन तथा सार्वभौमिक समाधान प्रस्तुत करता है, क्योंकि योग का मूल अर्थ ही "जोड़ना" है, व्यक्ति को स्वयं से, समाज को व्यक्ति से, तथा मानवता को सम्पूर्ण सृष्टि से जोड़ने का विज्ञान।

संस्कृत धातु "युज्" से निष्पन्न योग शब्द का तात्पर्य है युक्ति, संयोजन तथा एकीकरण। पतंजलि योगसूत्र में योग को चित्तवृत्तिनिरोध के रूप में परिभाषित किया गया है, किन्तु इसका चरम लक्ष्य कैवल्य अथवा पूर्ण एकता है, जहाँ द्रष्टा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर समस्त द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है। यह आन्तरिक एकता ही बाह्य शांति का आधार बनती है। जब व्यक्ति अपने भीतर द्वेष, अहंकार तथा भेदभाव को समाप्त कर लेता है, तब वह बाह्य जगत् में भी हिंसा तथा संघर्ष का समर्थन नहीं कर सकता।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६.२६)

योगयुक्त आत्मा सभी भूतों में अपने आत्मा को तथा अपने आत्मा में सभी भूतों को देखता है। वह सर्वत्र समदृष्टि रखता है। यही समदर्शन वैश्विक शांति का दार्शनिक आधार है। जब मनुष्य प्रत्येक प्राणी में अपने को देखता है, तब हिंसा असम्भव हो जाती है। गीता का यह श्लोक आज के युद्धग्रस्त विश्व में सबसे प्रासंगिक हैकृत्योंकि युद्ध का मूल "अन्य" को शत्रु मानने में निहित है, जबकि योग "अन्य" को भी आत्मा का ही विस्तार बताता है।

निष्कर्ष

वर्तमान वैश्विक संकट बाह्य समाधानों से पूर्णतः निपट नहीं सकते। आवश्यकता है आन्तरिक क्रांति की, चित्तवृत्तिनिरोध की, समत्व की, निष्काम कर्म की। योग यही क्रांति लाता है। वह व्यक्ति को स्वयं से जोड़ता है, समाज को सद्भाव से, तथा मानवता को सार्वभौमिक कल्याण से। अतः योग न केवल व्यक्तिगत आरोग्य का मार्ग है, अपितु वर्तमान वैश्विक संकटों के मध्य मानवता के अस्तित्व तथा उत्थान का अनिवार्य साधन है। इसका व्यापक तथा गहन अभ्यास ही भविष्य की शांति, स्वास्थ्य तथा सामंजस्य का आधार बनेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिगंबर स्वामी एवं पीतांबर हठप्रदीपिका (स्वात्माराम द्वारा) कैवल्यधाम योग संस्थान लोनावला पुणे, महाराष्ट्र,
2. महेशानंद स्वामी एवं अन्य संपादकीय बोर्ड हठप्रदीपिका ज्योत्सना (ब्रह्मानंद द्वारा) कैवल्यधाम योग संस्थान लोनावला पुणे, महाराष्ट्र,
3. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद घेरंदा संहिता (महर्षि घेरंदा की योग शिक्षाओं पर टिप्पणी), योग प्रकाशन ट्रस्ट, गंगादर्शन मुंगेर, बिहार, 1997।
4. भारती, परमहंस स्वामी अनंत घेरंड संहिता, चौखंबा ओरिएंटलिया, दिल्ली, 2013।
5. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद, योग दर्शन (उपनिषद दृष्टिकोण से योग) योग प्रकाशन न्यास, गंगादर्शन मुंगेर, बिहार, 1994
6. सिन्हा, प्रसाद हरेन्द्र: भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 1963

